प्रवचन नं. १२ गाथा-१३-१५ रविवार, दिनाङ्क २७-०३-१९६६
चैत्र शुक्ला ५, वीर संवत् २४९२

(पूज्यपादस्वामी) नामक दिगम्बर मुनि हुए हैं, उन्होंने इस इष्टोपदेश की रचना की है। इष्टोपदेश का अर्थ क्या? आत्मा को हितकर उपदेश, हित करनेवाला उपदेश, उसे इष्टोपदेश कहते हैं। उसमें १३वीं गाथा में अन्त में आया है। देखो!

यह मनुष्यपना पाकर प्राणी अपने शुद्धस्वरूप की रक्षा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र करते नहीं। समझ में आया? और पैसा कमाने में दुःख है, उसकी रक्षा करते हैं। इस उपदेश में यह है। अपना आत्मा शुद्ध ज्ञानघन आनन्दकन्द है। उसके श्रद्धा-ज्ञान से अपना रक्षण करना। यह मनुष्यपना प्राप्त करके भी रक्षा नहीं करते। धन.. धन शब्द से यह (मात्र) धन नहीं। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, इज्जत-कीर्ति, मकान को उत्पन्न करने में अपना काल व्यतीत करते हैं। देखो! धन, अर्थात् धन शब्द है। पैसा कमाने में, स्त्री का रक्षण करने में, पुत्र की वृद्धि करने में, इज्जत की वृद्धि करने में, बाहर की सामग्री की पुष्टि करने में अपना काल व्यतीत करते हैं कि जिसमें दुःख है। लक्ष्मी, स्त्री आदि उत्पन्न करने में दुःख है। दुःख है? समझ में आया? पैसे कमाना, स्त्री का रक्षण करना, ये सब भाव दुःख हैं।

**मुमुक्षु :** कर्तव्य है न?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कर्तव्य-वर्तव्य कैसा? यहाँ तो कहते हैं, दुःख है। अपना आत्मा अनादि-अनन्त शुद्ध आनन्दकन्द है, उसकी रक्षा नहीं करता। रक्षा अर्थात् उसकी श्रद्धा और ज्ञान नहीं करता है। मनुष्यपने में स्वयं का संरक्षण होना चाहिए कि जिससे संसार का नाश हो। ऐसा नहीं करता। अपने शुद्धस्वरूप की दृष्टि और श्रद्धा-ज्ञान, मैं आनन्द हूँ, मेरे स्वरूप में मेरी सब सम्पत्ति भरी हुई है। लक्ष्मी आदि बाह्य चीज़ मेरी नहीं है। पुत्र और पिता आदि सब बाह्य वस्तुएँ हैं। मेरा आत्मा ही मेरा पुत्र है और मेरा आत्मा ही मेरा पिता है। समझ में आया? ऐसी जिसे दृष्टि नहीं... पूज्यपादस्वामी महामुनि दिगम्बर सन्त, कुन्दकुन्दाचार्य महाराज के होने के बाद समन्तभद्राचार्य हुए, तत्पश्चात् ये पूज्यपादस्वामी हुए। ये जगत को उपदेश करते हैं।

धनादि कमाने में दुःख है। है न अन्तिम शब्द? धन शब्द है, परन्तु धन अर्थात् स्त्री,

कुटुम्ब-परिवार सब ले लेना। सबके उपार्जन में दुःख है। आत्मा की शान्ति के उपार्जन में आनन्द है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हरिभाई! उसका रक्षण करने की दरकार नहीं। मैं आत्मा हूँ, मुझमें शान्ति है, मेरा आनन्द मुझमें है - ऐसी दृष्टि, अपने स्वरूप की रक्षा नहीं करते। ऐसे अज्ञानी मनुष्यपना पाकर लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार के उपार्जन में अपना काल व्यतीत करते हैं। वह उपार्जन करने में दुःख है। पैसा कमाने में दुःख है? चौबीसों घण्टे ममता में घिर गया है।

**उसकी रक्षा करने में दुःख,..** है। एक तो उपार्जन में दुःख है, बाद में लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, शरीर आदि की रक्षा करना, वह तो दुःख है। आहा..हा..! समझ में आया? अपना स्वरूप शुद्ध आनन्द है। उसकी अन्दर (में) रक्षा करना, उसमें आनन्द है। रक्षा का अर्थ (यह कि) मैं आनन्दस्वरूप शुद्ध हूँ। मुझमें मलिनता का अंश दिखता है, वह मेरी चीज़ नहीं है। कर्म, शरीर भी मेरी चीज़ नहीं है और पूर्व के पुण्य के कारण से प्राप्त सामग्री भी मेरी नहीं है और मुझमें नहीं है। मेरी नहीं है और मुझमें नहीं है। इस तरह अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान से रक्षण होता है, स्वयं की दया होती है। बराबर है? स्वदया। पुण्य-पाप के परिणाम करने से दुःख होता है। लक्ष्मी उपार्जन में दुःख होता है, आत्मा की शान्ति की हिंसा होती है। बराबर है? बाबूभाई!

**मुमुक्षु :** उतरता नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उतरता नहीं, इसीलिए तो यह कहते हैं। इसीलिए तो उपदेश देते हैं।

भाई! तेरी सम्पदा तो अन्दर में आनन्द है न! आनन्द से भरपूर आत्मा पूर्णानन्द है। जैसे 'सिद्ध समान सदा पद मेरो', 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' मेरा पद तो सिद्धसमान केवलज्ञान आनन्द की लक्ष्मी से भरपूर है। ऐसे श्रद्धा-ज्ञान से रक्षा करने की दरकार नहीं है और बाहर की लक्ष्मी आदि उत्पन्न करने में दुःख है, तो भी अपना काल व्यतीत करता है। **उसकी रक्षा करने में दुःख,..** है।

**मुमुक्षु :** उपार्जन करने में तो दुःख, परन्तु बाद में तो भोगता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह यही कहते हैं, रक्षा करने में दुःख है। और **उसके जाने में दुःख,..** है। जो वस्तु मिली, वह चली जाए तो अरे! ऊब (आती है)। आवे वह तो समाये

परन्तु जाये, उसमें दु:ख है। इस तरह अज्ञानी अनादिकाल से अपने चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान की रक्षा नहीं करके, पर के उपार्जन में, रक्षा में, और पर का नाश होने में दु:ख मानता है। समझ में आया?

यह कहते हैं, देखो! **इस तरह हर हालत में दु:ख के कारणरूप धन..** धन, स्त्री, परिवार सब, सभी परिस्थिति में दु:ख का कारण है। ऐसा होगा फावाभाई! यह लड़का 'मनहर' दु:ख का कारण (होगा)?

**मुमुक्षु :** लड़के के प्रति रुचि है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उसकी ममता है न, कि यह होवे तो ठीक; यह दु:ख; रक्षा करने में दु:ख; उपार्जन में दु:ख; और नाश होने में दु:ख। आहा..हा..! भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द से भरपूर है, उसकी अन्तर में दृष्टि करना, वह स्वदया है। समझ में आया? यह दया। मैं आत्मा हूँ, पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वे भी आस्रवतत्त्व, विकार हैं। शरीर आदि तो पृथक् ही हैं। ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव, आत्मा में राग और राग की एकत्वबुद्धि छोड़ने का नाम भगवान आत्मा की रक्षा और दया कहते हैं। कहो, बराबर है? भारी कठिन! अन्दर में यह चीज़ क्या है, अन्दर वस्तु क्या है, उसकी खबर नहीं तो परवस्तु का उपार्जन करना, रक्षा करना और नाश होवे तो दु:ख मानना, इस तरह अनादिकाल से परिभ्रमण करते हुए अनन्त काल बीत गया।

**दोहा – कठिन प्राप्त संरक्ष्य ये, नश्वर धन पुत्रादि।**
**इनसे सुख की कल्पना, जिमि धृत से ज्वर व्याधि।।१३।।**

देखो! है न श्लोक? पूज्यपादस्वामी... ऐई! लड़कों पढ़ने देना मेहमानों को, लड़कों के पास होवे तो। समझ में आया? मेहमान को देना, नये आये हैं न। तुम तो यहाँ लड़के हो। इष्टोपदेश, यहाँ हो रहा है। थोड़े - से थे न?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, यहाँ तो यही कहते हैं। मूल तो यह कहते हैं। आगे तो यह कहेंगे कि यदि हम पैसा कमावें तो फिर दान, पूजा में काम आयेंगे। आगे पन्द्रहवीं गाथा में है। गाथा में है, हों! देखो! **यहाँ पर शिष्य का कहना है कि धन, जिससे पुण्य का उपार्जन किया जाता है, वह निंद्य-निन्दा के योग्य क्यों है?** लक्ष्मी आदि निन्दा के

योग्य है – ऐसा आप कैसे कहते हों ? हम पुण्य उपार्जन करते हैं, पुण्य के कारण से मिलता है। पात्र को दान देना, देव की पूजा करना, यह हमें पुण्य का कारण है। यह सब धन के बिना हो नहीं सकता, इसलिए पुण्य का साधन धन निन्द्य कैसे हैं ? परन्तु यह लक्ष्मी उपार्जन करने का भाव ही पाप है। समझ में आया ? पाप करके फिर तू पुण्य करेगा, यह दूसरी बात है। पहले पाप करना, पाप करके... फिर धूल लगाकर बाद में स्नान करूँगा, कीचड़ लगाकर फिर स्नान करूँगा। पहले कीचड़ क्यों लगाना ? (पहले) लक्ष्मी उपार्जन करूँ, बाद में देवपूजा में, दया, दान में मेरा पुण्यभाव उपार्जन करूँगा। परन्तु वह तो पुण्य है। किन्तु पहले से धन उपार्जन करने में पाप करता है। पाप का बन्धन करके बाद में पुण्य करूँगा, यह बात न्याय की नहीं है। समझ में आया ? कितने ही ऐसा कहते हैं न कि पहले हम पाँच-पचास लाख लक्ष्मी कमा लेंगे, बाद में दान में खर्च करेंगे। धूल में (खर्चेगा)। पहले पाप किया, उसका क्या करना ? बाद में तेरे राग की मन्दता हो या न हो, वह बाद की बात। मान के लिये खर्च करे, दुनिया में कीर्ति के लिये खर्च करे, स्वयं बहुत पाप किये हों, उनके नाश के लिये खर्च करे, दुनिया में अच्छी प्रतिष्ठा रहे, उसके लिये खर्च करे। वह तेरा उपार्जन में भी पाप और खर्च करने में भी पाप। समझ में आया ?

पहले पाप की लक्ष्मी उपार्जन करना नहीं। समझ में आया ? लक्ष्मी आदि, पुत्र आदि हों ! सब लोना। लड़का हो तो फिर हमें वृद्धावस्था में धर्मध्यान हो सके, सेवा करे, निवृत्ति ली जा सके। ऐ.. फावाभाई ! कहते हैं कि मूढ़ है। पैसा उपार्जन करना, उनकी रक्षा करना और उनके कारण मुझे धर्म का साधन होगा, यह तेरी मान्यता ही मूढ़ है। अपने धर्म का साधन तो निज स्वरूप में से होता है; बाहर से कोई नहीं होता। समझ में आया ? **कठिन प्राप्त संरक्ष्य ये, नश्वर धन पुत्रादि।** देखो ! यहाँ सब लिया। **इनसे सुख की कल्पना, जिमि धृत से ज्वर व्याधि।** बुखार आया हो, कालिया गर्म बुखार आया, फिर घी लगाना और सुख मानना। बहुत बुखार आवे तो घी लगाते हैं न ? बुखार आता है तो। वह तो मूढ़ है। ऐसा कहते हैं कि निज स्वरूप के श्रद्धा-ज्ञान की रक्षा किये बिना, पर की रक्षा करने में काल जाता है, वह तो **धृत से ज्वर व्याधि।** व्याधि में घी लगाना और दुःखी होना, ऐसी वस्तु है। इसलिए लक्ष्मी आदि उपार्जन करने का भाव छोड़ना। अपनी आत्मा का श्रद्धा-ज्ञान करना, ऐसा कहते हैं।

फिर भी शिष्य पूछता है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जब 'मुश्किलों से कमायी जाती' आदि हेतुओं से धनादिक सम्पत्ति दोनों लोकों में दु:ख देनेवाली है, तब ऐसी सम्पत्ति को लोग छोड़ क्यों नहीं देते? आचार्य उत्तर देते हैं –

**विपत्तिमात्मनो मूढ़: परेषामिव नेक्षते।**
**दह्यमान-मृगाकीर्णवनांतर-तरुस्थवत्।।१४।।**

अर्थ – जिसमें अनेकों हिरण दावानल की ज्वाला से जल रहे हैं, ऐसे जंगल के मध्य में वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य की तरह यह संसारी प्राणी दूसरों की तरह अपने ऊपर आनेवाली विपत्तियों का ख्याल नहीं करता है।

विशदार्थ – धनादिक में आसक्ति होने के कारण जिसका विवेक नष्ट हो गया है, ऐसा यह मूढ़ प्राणी चोरादिक के द्वारा की जानेवाली, धनादिक चुराये जाने आदिरूप अपनी आपत्ति को नहीं देखता है, अर्थात् वह यह नहीं ख्याल करता कि जैसे दूसरे लोग विपत्तियों के शिकार होते हैं, उसी तरह मैं भी विपत्तियों का शिकार बन सकता हूँ। इस वन में लगी हुई यह आग इस वृक्ष को और मुझे भी जला देगी। जैसे ज्वालानल की ज्वालाओं से जहाँ अनेक मृगगण झुलस रहे हैं–जल रहे हैं, उसी वन के मध्य में मौजूद वृक्ष के ऊपर चढ़ा हुआ आदमी यह जानता है कि ये तमाम मृगगण ही घबरा रहे हैं–छटपटा रहे हैं, एवं मरते जा रहे हैं, इन विपत्तियों का मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं तो सुरक्षित हूँ। विपत्तियों का सम्बन्ध दूसरों की सम्पत्तियों से है, मेरी सम्पत्तियों से नहीं है।।१४।।

दोहा – पर की विपदा देखता, अपनी देखे नाहिं।
जलते पशु जा वन विषैं, जड़ तरुपर ठहराहिं।।१४।।

## गाथा - १४ पर प्रवचन

शंका—**फिर भी शिष्य पूछता है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि जब 'मुश्किलों से कमायी जाती'**.. बहुत मुश्किल से लक्ष्मी, पुत्र-पुत्रियाँ कठिनता से मेहनत से हो **हेतुओं से धनादिक सम्पत्ति दोनों लोकों में दु:ख देनेवाली है,**.. देखो! शिष्य का

प्रश्न है। प्रभु..! गुरु को पूछता है कि यह लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, इज्जत इस भव में दुःख देनेवाले हैं और परभव में भी दुःख देनेवाले हैं। पोपटभाई! ठीक होगा यह? देखो!

**'मुश्किलों से कमायी जाती' आदि हेतुओं से..** अर्थात् बहुत पसीना उतारे। मेहनत करके, ब्याज करके, मजदूरी करके पैसा कमावे। यह मजदूरी ही है न? आठ-आठ घण्टे बनिये मजदूरी करते हैं न? बारह-बारह घण्टे दुकान में बैठते हैं। राग की मजदूरी है।

**मुमुक्षु :** अरे! गद्दे-तकिये पर बैठते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** गद्दी-तकिया किसे कहना? होली सुलगती हो वहाँ। वे मजदूर तो आठ घण्टे काम करे। आठ घण्टे में अभी तो सब समझने जैसा है। और यह (बनिया) बैठे बारह घण्टे। सबेरे से बैठे तो रात्रि के दस बजे तक। बड़ा मजदूर है। ऐई..! कहते हैं कि **'मुश्किलों से कमायी जाती' आदि हेतुओं से धनादिक..** लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार सब, हों! मुश्किल से मिला। **दोनों लोकों में दुःख देनेवाली है,..** स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी इस भव में दुःख देनेवाले हैं, क्योंकि ममता करता है कि मेरे हैं। दुःख है। और परभव में भी इसे दुःख देनेवाले ही है। भगवान आत्मा अन्तर आनन्दस्वरूप है, वर्तमान उसका श्रद्धा-ज्ञान करे तो आनन्द होता है और भविष्य में भी आत्मा आनन्द का दाता है। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति का श्रद्धा-ज्ञान करे तो वर्तमान में भी आनन्द हो और भविष्य में भी आनन्द हो; और इसके अतिरिक्त जगत की चीज़ की रक्षा करने में, मिलने में, स्त्री को, पुत्र को, पैसे को, मकान को, इज्जत प्राप्त करने में वर्तमान में दुःख है, भविष्य में भी दुःख है।

महाराज! **तब ऐसी सम्पत्ति को लोग छोड़ क्यों नहीं देते?** ऐ.. जैचन्दभाई! ऐसा है तो छोड़ते क्यों नहीं? ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं कि ममता करते हैं। बापू! यह ममता करते हैं। यह ममता.. ममता.. ममता में सुलग गया है। ममता से जला हुआ है। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की लक्ष्मी है, उसका श्रद्धा-ज्ञान करता नहीं। ममता में जल रहा है। यह कहते हैं, देखो! शिष्य का प्रश्न है कि महाराज! स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी, इज्जत, सब! वे दुःख देनेवाले हैं। इस भव में और परभव में दोनों में दुःख देनेवाले हैं। ऐसा कहकर क्या कहा? कि अज्ञानी लक्ष्मी को, परिवार को, पुत्र को 'मुझे सुख देनेवाले हैं',

ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया ? ये बढ़ेंगे तो वृद्धावस्था में मेरा रक्षण करेंगे तो मुझे लाभ होगा, ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि मूढ़ अज्ञानी की है। समझ में आया ? पर के कारण, पर के साधन से अपने को सुख मिले और शान्ति मिले, ऐसा तीन काल में नहीं होता, यह बताते हैं।

**तब ऐसी सम्पत्ति को लोग छोड़ क्यों नहीं देते?** स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी की ममता छोड़कर आत्मा की समता क्यों नहीं करते ? ऐसा कहते हैं। आत्मा शुद्ध चिदानन्द के श्रद्धा-ज्ञान क्यों नहीं करते ? उसका समय क्यों नहीं लेते ? **आचार्य उत्तर देते हैं –**

**विपत्तिमात्मनो मूढ़ः परेषामिव नेक्षते।**
**दह्यमान-मृगाकीर्णवनांतर-तरुस्थवत्।।१४।।**

**जिसमें अनेकों हिरण दावानल की ज्वाला से जल रहे हैं,..** देखो दृष्टान्त! जंगल में बड़ा दावानल हो। जंगल में अनेक हिरण दावानल से जल रहे हैं। हिरण आदि। **ऐसे जंगल के मध्य में वृक्ष पर बैठे हुए..** ऐसे जंगल में एक पेड़ / वृक्ष था। उस पर एक पुरुष बैठा था। **मनुष्य की तरह यह संसारी प्राणी दूसरों की तरह अपने ऊपर आनेवाली विपत्तियों का ख्याल नहीं करता है।** हिरण आदि जलते हैं तो, वे जलते हैं, मुझे क्या ? तू इस वृक्ष पर बैठा है, अग्नि अभी यहाँ पहुँच जाएगी, तब तू और वृक्ष दोनों जल जाएँगे। यह दिखायी नहीं देता, दिखायी नहीं देता। मुझे कहाँ है ? उन्हें है। उनकी लक्ष्मी गयी, उनका पुत्र मर गया, उनके शरीर में क्षय रोग हुआ, उन्हें ऐसा हुआ, उसमें मुझे क्या ? परन्तु पूरे जंगल में अग्नि जलती है, उसके मध्य में पड़ा है। आत्मा के आनन्द के भान बिना संयोग के बीच पड़ा है। संयोग चले जाएँगे और वियोग होगा। यह तो अनित्यता है तो क्षण में हो जाएगी। उससे तो विचार करता नहीं। उसकी लक्ष्मी गयी, मुझे क्या ? उसका पुत्र मर गया, मुझे क्या ? उसे शरीर में रोग आया, मुझे क्या ? परन्तु तुझे आएगा। यह जड़, मिट्टी, धूल है, यह कहाँ आत्मा है। समझ में आया ? रोग आवे परन्तु अपने को देखता नहीं। पोपटभाई! दूसरे का देखता है परन्तु स्वयं वृक्ष के ऊपर बैठा है, पूरे जंगल में आग लगी है, बीच में वृक्ष है, उस पर बैठा है, दूसरे का दुःख देखता है, उसकी आपदा देखता है, उसे आपदा है – ऐसा देखता है परन्तु मुझे आएगी – ऐसा नहीं देखता।

**मुमुक्षु :** ऊँचे बैठा है न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऊँचे बैठा है परन्तु अभी वृक्ष सुलगेगा / जलेगा, उसमें तू और वृक्ष दोनों भस्म हो जाएँगे, उसका विचार नहीं करता। समझ में आया ?

**विशदार्थ – धनादिक में आसक्ति होने के कारण..** यहाँ तो आत्मा की शुद्ध श्रद्धा नहीं करते, ऐसे मिथ्यादृष्टि की बात है, हों ! सम्यग्दृष्टि है, उसे लक्ष्मी में जरा राग है, वह तो थोड़ा राग है। उसमें परिमित दोष है क्योंकि सम्यग्दृष्टि को तो आत्मा की रुचि है, आनन्द मैं हूँ – ऐसी दृष्टि है तो उसे लक्ष्मी का जरा राग आता है तो उस लक्ष्मी के कारण राग नहीं आता। समकिती को राग में सुखबुद्धि नहीं है। समझ में आया ?

छह खण्ड का राज हो, 'भरत घर में वैरागी' आता है या नहीं ? भरत चक्रवर्ती को छह खण्ड का राज था, छियानवें हजार स्त्रियाँ थीं, (तथापि) अन्दर में उदास है। मैं आत्मा आनन्द हूँ, मेरा आनन्द पर में नहीं है। छियानवें हजार स्त्रियों में नहीं है। आसक्ति का राग जरा आता है, वह जहर है, दुःख है। मेरा आनन्द मेरे पास है, ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थाश्रम में हो तो भी अपना आनन्द अपने में मानता है। स्त्री में, लक्ष्मी में, पुत्र में आनन्द नहीं मानता। समझ में आया ? यह तो माननेवाले की बात चलती है।

सम्यग्दृष्टि तो इन्द्राणी में सुख नहीं मानता। स्वर्ग में समकिती इन्द्र है और करोड़ों अप्सराएँ हैं। अरे ! वे तो परवस्तु है। मेरा आनन्द मेरे पास है। मैं जितना अन्तर में एकाग्र होऊँ, उतनी मुझे शान्ति मिलेगी। पर में शान्ति नहीं है। पर में शान्ति और सुख तीन काल में नहीं है। ऐसे सम्यग्दृष्टि की अपने आत्मा के आनन्द पर दृष्टि है। मिथ्यादृष्टि पर में आनन्द मानता है और पर का दुःख देखकर, अपने को दुःख आयेगा, वह नहीं देखता। समझ में आया ?

**धनादिक में आसक्ति होने के कारण जिसका विवेक नष्ट हो गया है,..** देखो ! लक्ष्मी, पुत्र, पत्नी आदि में इतनी आसक्ति और गृद्धि है–कि अपना विवेक नष्ट हो गया। अरे ! मैं क्या करता हूँ ? मैं करता हूँ तो उनकी रक्षा होगी ? और उनकी रक्षा होगी तो मुझे लाभ है ? वे रहें तो मुझे लाभ है ? जायें तो मुझे क्या नुकसान है ? ऐसा विवेक अज्ञानी को अन्तर में नहीं होता है। समझ में आया ?

**धनादिक..** धनादिक में, पुत्र में, पत्नी में, इज्जत में, बड़ा मकान हो, पाँच–पाँच

लाख की किराये की आमदनी हो। भाड़ा को क्या कहते हैं ? किराया। किराया पैदा होता हो, पाँच-पचास लाख का मकान हो, पाँच-पचास लाख का ब्याज आता हो। आसक्ति, गृद्धि। मूढ़ गृद्धि हो गया। मेरी चीज़ मेरे पास है, उसे तो भूल गया। मानो कि उससे मुझे लाभ होगा। **जिसका विवेक नष्ट हो गया है,..** यहाँ यह कहना है। पुण्य-पाप के भाव होते हैं, वे भी दुःखरूप हैं। समझ में आया ? आत्मा में शुभ-अशुभभाव होते हैं, वे आस्रव दुःखरूप हैं और उनका फल संयोग भी दुःखरूप है। तो दुःखरूप है, उन्हें सुखरूप मानता है।

**जिसका विवेक नष्ट हो गया है, ऐसा यह मूढ़ प्राणी..** मूढ़ प्राणी। **चोरादिक के द्वारा की जानेवाली, धनादिक चुराये जाने आदिरूप अपनी आपत्ति को नहीं देखता है,..** क्या कहते हैं ? देखो! दूसरे की लक्ष्मी चोर लूट ले जाए तो देखता है कि उसके (चोरी हो गयी), परन्तु तेरी लक्ष्मी भी लोग ले जाएँगे। वह परचीज़ है। ले जाएँगे का अर्थ है - पुण्य से मिली है और पाप का उदय आएगा तो चली जाएगी। वह लक्ष्मी पुण्य से मिली है, तेरे पुरुषार्थ से नहीं। पूर्व का पुण्य था तो मिली है। जब पाप का उदय आएगा तो चली जाएगी। वह लक्ष्मी तेरी नहीं है परन्तु दूसरे के पाप के उदय से चली जाए तो उसे गयी है, मुझे तो रह गयी, (ऐसा मानता है) परन्तु लक्ष्मी कहाँ तेरी चीज है ? समझ में आया ?

**चोरादिक के द्वारा की जानेवाली,..** चोर यह राजा लूट ले जाए। देखो न, अभी तो यह सब बहुत होता है न ? पकड़ते हैं या नहीं ? एकदम छापा पड़ते हैं। मुम्बई में वह.. बाबूभाई ! पड़ते हैं या नहीं ? छापा पड़ते हैं। लो। लाओ, चलो बाहर निकल जाओ। पूरा मकान खोजना है। उसमें से दस-पाँच लाख रुपये निकले तो लाओ, चलो जेल में। उसे दुःख है, हमारे कहाँ है ? परन्तु कल तुझे आएगा, क्योंकि वह बाहर की लक्ष्मी पुण्य के आधीन है। ये पुत्र, पुत्रादि पुण्य के आधीन है। जब तेरा पाप का उदय आएगा तो चले जाएँगे। इस नुकसान की ओर नहीं देखता। पर का नुकसान देखता है परन्तु मेरा पाप का उदय आएगा तो चली जाएगी तो यह सुखरूप नहीं है, ऐसा अज्ञानी नहीं मानता। समझ में आया ? चोर आदि, राजा आदि... समझे ? **धनादिक चुराये जाने आदिरूप अपनी आपत्ति को नहीं देखता है,..** मेरा पाप का उदय आएगा और सब चला जाएगा - ऐसा नहीं देखता। उसका जाता है। उसका तो पाप का उदय है तो जाता है, परन्तु तेरा क्या ? पुण्य-पाप दोनों चीज़ पर है। आत्मा में जो लाभ है, उसे छोड़कर जितने पुण्य-पाप किये, उनका

संयोग हुआ। संयोग और वियोग होना, वह उसकी चीज़ है। उसमें कुछ सुख है नहीं। समझ में आया?

**वह यह नहीं ख्याल करता कि जैसे दूसरे लोग विपत्तियों के शिकार होते हैं,..** शिकार को क्या कहते हैं? विपत्तियों का भोग बनना। उन्हें विपत्तियाँ होती हैं। **उसी तरह मैं भी विपत्तियों का शिकार बन सकता हूँ।** समझ में आया? प्रतिकूलता आयेगी क्योंकि बाहर की चीज़ पुण्य के कारण आती है और बाहर की चीज़ पाप के कारण चली जाती है। तेरा पुरुषार्थ वहाँ काम नहीं करता। बराबर है? भाई!

**मुमुक्षु :** दूसरे को विपत्ति आवे, तब अपने को क्या करना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आत्मा आनन्द है, ऐसी दृष्टि (करना)। करना है क्या? यहाँ तो पुण्य के कारण प्राप्त वस्तु में सुखबुद्धि छोड़ देना और पाप के कारण से प्रतिकूलता आवे, उसमें दुःखबुद्धि छोड़ देना। आत्मा में सुख है। उसके लिए तो इष्ट उपदेश है। पर के कारण कुछ नहीं है। पूर्व के पुण्य के कारण मिली हो। तेरे पुरुषार्थ से मिली है? पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं। महीने में पाँच हजार भी नहीं मिलते और बाहर में कालाबाजार और कुकर्म करे, उसमें पुण्य का कारण (उदय) होवे तो करोड़ों की आमदनी करते हैं, उसमें आया क्या? और पाप का उदय हो तो इतना भी आकर चला जाता है। वह तो संयोगी चीज़ है, वह कहीं स्वाभाविक वस्तु नहीं है। स्वाभाविक वस्तु नहीं कि अपने रक्षण करने से, उपार्जन करने से आनन्द, रक्षा करने से आनन्द, वृद्धि करने से आनन्द होता है। समझ में आया?

अपना आत्मा आनन्द सिद्धस्वरूप शुद्ध आनन्द की श्रद्धा करने में आनन्द, उसकी स्थिरता करने में आनन्द, उसकी शुद्धि की वृद्धि करने में आनन्द। आहा..हा..! ऐसी श्रद्धा, विवेक छोड़कर परपदार्थ की रक्षा में सुख (मानता है)। (वास्तव में) है दुःख। उपार्जन में दुःख, नाश होने में दुःख, परन्तु मूढ़ वहाँ से हटकर अपने स्वरूप की दृष्टि नहीं करता। कहो, समझ में आया?

**मुमुक्षु :** तब तो मूढ़ की संख्या बढ़ जाए।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मूढ़ की संख्या बहुत है। कैसे? जयन्तीभाई! आहा..हा..!

यहाँ तो सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से बात करते हैं, हों! यह साधारण उपदेश नहीं है।

यह ऐसा कहते हैं कि पूर्व के पुण्य के कारण से वह मिलने में भी तुझे श्रम है, उसकी रक्षा करने में भी तुझे श्रम है; जाता है, तब तुझे दुःख होता है। उस संयोग में तेरी कोई वस्तु नहीं है। स्वभाव में तेरी वस्तु है, भाई! तुझे खबर नहीं है। मैं आत्मा सिद्धसमान शुद्ध हूँ। मेरी केवलज्ञान लक्ष्मी मुझमें पड़ी है, मेरा आनन्द भी मुझमें है। ऐसी दृष्टि सम्यग्दर्शन किए बिना, संयोग-वियोग में सुख-दुःख मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐसे संयोग में सुख माने और वियोग में दुःख माने, बाहर की चीजों में (सुख-दुःख माने, वह) मूढ़ है। क्या है? संयोग हुआ तो क्या सुख है? और वियोग हो तो उससे दुःख है? तेरे आत्मा में आनन्द है, भाई! तुझे श्रद्धा नहीं।

'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्धसमान सदा पद मेरो' बनारसीदास, नाटक समयसार में कहते हैं। सिद्धसमान, चेतनरूप। मैं तो चेतनरूप हूँ। मैं बादशाह परमात्मा हूँ। चेतनरूप अनूप। मेरी वस्तु को कोई उपमा नहीं है। पुण्य-पाप के भाव भी बन्ध का कारण है। दुःख का कारण है। 'चेतनरूप अनूप अमूरत'। मूर्तरहित हूँ। मुझमें वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है। सिद्धसमान सदा पद मेरो। मेरा स्वरूप तो शुद्ध, जैसे सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही मेरी शक्तिरूप से मैं सिद्ध ही हूँ। ऐसी दृष्टि करना, उसका ज्ञान करना, उसमें स्थिर होना, यह सुख का कारण है। बाकी कोई सुख का कारण तीन काल-तीन लोक में नहीं है। पुण्य-पाप के भाव करना भी दुःखरूप है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? बाबूभाई!

**मुमुक्षु :** .....सम्पत्ति छोड़ने का....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह सम्पत्ति अर्थात् यह धूल की सम्पत्ति। पुण्य-पाप से मिलती है वह। दृष्टि छोड़ दे। सम्पत्ति छोड़ने का अर्थ क्या? बाहर की सम्पत्ति छोड़े और अन्दर से उसकी ममता न छोड़े तो क्या छोड़ा? बाहर की सम्पत्ति वास्तव में कब छूटी कहलाये? अपने शुद्धस्वरूप की श्रद्धा-ज्ञान में उसकी तुच्छता ज्ञात हो। पर में सुख नहीं है। तुच्छता ज्ञात होने पर उसकी ममता चली जाती है और स्वरूप की समता आती है, तब उसे छोड़ा - ऐसा कहने में आया है। ममता छोड़े बिना क्या छोड़ा? बाहर से तो अनन्त बार छोड़ा। यह नहीं कहते। वह तो पूर्व के कर्म के कारण से छूट गयी है; तेरे कारण से नहीं। तेरा तो अन्तर आनन्द है।

मेरी लक्ष्मी का मैं स्वामी चैतन्यरूप हूँ। मुझमें तो केवलज्ञान भरा है, अतीन्द्रिय

आनन्द भरा है। एक मेढ़क हो तो भी अपना सम्यग्दर्शन-श्रद्धा करता है तो सुखी है। नरक में भी नारकी अपना आनन्द, समकित करता है तो सुखी है। समझ में आया? और बाहर की लक्ष्मी चक्रवर्ती का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ सब दुःख का कारण है। समझ में आया? सुख का कारण नहीं। परद्रव्य सुख का कारण होगा? मूढ़ अज्ञानी अनादि से मानता है कि अनुकूल हो तो ठीक है, प्रतिकूलता आवे तो अठीक है। इस मान्यता में मिथ्यात्व पड़ा है। भ्रम पड़ा है, भ्रम।

**जैसे दूसरे लोग विपत्तियों के शिकार होते हैं,..** विपत्तियाँ आ जाती हैं, वैसे मैं भी विपत्ति में आ जाऊँगा, ऐसा विचार अज्ञानी नहीं करता। अभी तो शरीर ठीक है। मेरी स्त्री बहुत अनुकूल है, मेरा पुत्र बहुत अनुकूल है। दूसरों के भले होगा। मूढ़ है। वह तो परचीज़ है। अनुकूल-प्रतिकूल मानना, वही मूढ़ मिथ्यादृष्टि की बात है। परचीज़ अनुकूल-प्रतिकूल है ही नहीं। वह तो जानने की चीज़ है। स्त्री, कुटुम्ब तेरे है कहाँ? तेरा तो आत्मा है। शरीर तेरा नहीं, पुण्य-पाप भाव उत्पन्न होते हैं, वे भी तेरे नहीं। वह भी राग है, विकार है। स्त्री, पुत्र, परिवार तेरे कहाँ से हुए? ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया?

**इस वन में लगी हुई यह आग इस वृक्ष को और मुझे भी जला देगी।** दूसरों को जलाती है तो मैं भी वन में वृक्ष के ऊपर हूँ, मुझे भी जला डालेगी। **जैसे ज्वालानल की ज्वालाओं से..** ज्वालानल की ज्वाला से-अग्नि से, **जहाँ अनेक मृगगण झुलस रहे हैं..** जल रहे हैं। **उसी वन के मध्य में...** देखो! मैं भी वन में-संयोग-वियोग के मध्य में पड़ा हूँ, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..! **वन के मध्य में मौजूद वृक्ष के ऊपर चढ़ा हुआ आदमी यह जानता है कि ये तमाम मृगगण ही घबरा रहे हैं-छटपटा रहे हैं, एवं मरते जा रहे हैं,..** वे मरते हैं। **इन विपत्तियों का मुझसे कोई संबंध नहीं है,..** मूढ़ ऐसा मानता है। परन्तु वह संयोगी चीज़ है, भाई! वह नाशवान है, क्षण में नाश हो जाएगी। संध्या के रंग जैसी वस्तु है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** वृक्ष पर चढ़े हुए मनुष्य की मूर्खायी तो ख्याल में आती है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** इस मूढ़ को ख्याल में नहीं आती। क्योंकि अन्दर आत्मा आनन्द और शुद्ध है, उसका माहात्म्य और प्रतीति नहीं आती। धर्मी नाम धराकर भी अपना शुद्ध आनन्द मुझमें है, ऐसी प्रतीति नहीं आती तो उसे धर्म यथार्थ नहीं होता। धर्म क्या बाहर से

होता है ? समझ में आया ? मेरी शान्ति का सागर, आनन्द का सागर मैं आत्मा हूँ—ऐसी अन्तर श्रद्धा, विश्वास किये बिना अपने में सुख और शान्ति का धर्म कभी नहीं होता। पुण्य-पाप के परिणाम में ही धर्म नहीं है; बाहर की क्रिया में तो धर्म है ही नहीं। संयोग में सुख-दुःख माननेवाले, संयोग तो प्रतिकूल आवें और अनुकूल आवें, ऐसा तो चला ही करता है, ज्वारभाटा (आया ही करता है)। क्या कहलाता है ? चढ़ती-गिरती छाया... क्या कहलाता है हिन्दी में ? चलती-फिरती छाया। छाया होती है न ? छाया, आती है, जाती है; आती है, जाती है। उसमें क्या है ? इसी प्रकार संयोगी चीज़ तो आती है और जाती है। उसकी अवधि से आती है और उसकी अवधि से चली जाती है। तुझमें वह वस्तु कहाँ है कि तू उसका रक्षण कर सके और रख सके ? ओहो..हो..!

**मैं तो सुरक्षित हूँ।** ऐसा अज्ञानी मानता है। **विपत्तियों का सम्बन्ध दूसरों की सम्पत्तियों से है, मेरी सम्पत्तियों से नहीं है।** बराबर मेरे लड़के, मेरी लक्ष्मी बराबर हैं। एक प्रतिशत का ब्याज आवे, ऐसी जगह मैंने रखी है। मेरी लक्ष्मी ऐसे नहीं जाएगी। आहा..हा..! ऐसा मूढ़ मानता है।

**मुमुक्षु :** पूरी जिन्दगी में बना हो....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अरे! धूल भी बने नहीं, एकदम चला जाए। कितने ही देखे हैं यहाँ। संयोग में सुख माननेवाले मूढ़ हैं, ऐसा यहाँ बताना है। स्वभाव में सुख है ऐसा नहीं मानकर संयोग में सुख है, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? और संयोग के वियोग में दुःख है, यह भी मूढ़ मानता है। पर के कारण कहाँ दुःख है ? दुःख तो अपने आत्मा के आनन्द की दृष्टि छोड़कर पर में सुख-दुःख की मान्यता करना, वह मिथ्या भाव ही दुःख है। समझ में आया ? वह मिथ्यात्वभाव दुःख है और सम्यग्दर्शन, वह सुख है। दो के विवेक बिना दूसरे के दुःख देखता है, परन्तु स्वयं को आपत्ति आ पड़ेगी, ऐसा नहीं देखता क्योंकि बाहर में आपत्ति-सम्पत्ति आनेवाली है, उसका संयोग-वियोग तो है ही। ऐसा यहाँ तो कहते हैं। तेरा स्वभाव कभी चला नहीं जाएगा। तेरी वस्तु तेरे पास है। उसकी दृष्टि और ज्ञान किये बिना संयोग-वियोग में आपदा-विपदा मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है।

**दोहा- पर की विपदा देखता, अपनी देखे नाहिं।**
**जलते पशु जा वन विषैं, जड़ तरुपर ठहराहिं।।१४।।**

वृक्ष पर बैठा है कि ओहो..! अपने कुछ (नहीं), परन्तु मर जाएगा अभी। अभी अग्नि आने पर जल जाएगा। चोर को पकड़ा, सरकार ने इसे पकड़ा, इसे कैद में डाला। अभी यह हुआ... ऐसा नहीं सुनते? परन्तु तू भी काला बाजार आदि करता है, वह प्रगट हो जाएगा तो तू भी पकड़ा जाएगा। यह विचार नहीं करता।

**मुमुक्षु :** करना क्या?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** करना आत्मा की श्रद्धा। मैं आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि करना। अपना स्वभाव अपने से कभी छूट नहीं जाता। संयोग-वियोग तो चले जाते हैं, वह तो हरती-फिरती छाया है। अपना आत्मा ज्ञान का सूर्य चैतन्यमूर्ति है। ज्ञान तेज, आनन्द तेज है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करना। मुझमें सुख है, पुण्य-पाप में और पर में कहीं सुख है नहीं, ऐसी दृष्टि करना, वही आनन्द का और सुख का उपाय है। कहो, समझ में आया? बाबूभाई! कैसे होगा? पैसेवालों को बहुत आवे और जावे, आवे और जावे। हुआ करे।

यह १४वीं गाथा हुई, पश्चात् १५वीं (गाथा में) पूछते हैं, हों!

---

**फिर भी शिष्य का कहना है कि हे भगवन्! क्या कारण है कि लोगों को निकट आई हुई भी विपत्तियाँ दिखाई नहीं देती? आचार्य जवाब देते हैं – 'लोभात्' लोभ के कारण, हे वत्स! धनादिक की गृद्धता-आसक्ति से धनी लोग सामने आई हुई भी विपत्ति को नहीं देखते हैं, कारण कि –**

**आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमं।**
**वांछतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम्।।१५।।**

**अर्थ – काल का व्यतीत होना, आयु के क्षय का कारण है और कालान्तर के माफिक ब्याज के बढ़ने का कारण है, ऐसे काल के व्यतीत होने को जो चाहते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि अपने जीवन से धन ज्यादा इष्ट है।**

**विशदार्थ – मतलब यह है कि धनियों को अपना जीवन उतना इष्ट नहीं, जितना कि धन। धनी चाहता है कि जितना काल बीत जायगा, उतनी ही ब्याज की आमदनी**

**बढ़ जायेगी। वह यह ख्याल नहीं करता कि जितना काल बीत जायगा उतनी ही मेरी आयु (जीवन) घट जायेगी। वह धनवृद्धि के ख्याल में जीवन (आयु) विनाश की ओर तनिक भी लक्ष्य नहीं देता। इसलिए मालूम होता है कि धनियों को जीवन (प्राणों) की अपेक्षा धन ज्यादा अच्छा लगता है। इस प्रकार के व्यामोह का कारण होने से धन को धिक्कार है।।१५।।**

**दोहा – आयु क्षय धनवृद्धि को, कारण काल प्रमान।**
**चाहत हैं धनवान धन, प्राणनिते अधिकान।।१५।।**

## गाथा - १५ पर प्रवचन

**फिर भी शिष्य का कहना है कि हे भगवन्!** शिष्य, गुरु को पूछता है। दिगम्बर सन्त पूज्यपादस्वामी इत्यादि। ऐसा तर्क उठाया है। **क्या कारण है कि लोगों को निकट आई हुई भी विपत्तियाँ दिखाई नहीं देती?** है क्या यह? यह संयोग है, वियोग हो जाएगा। ऐसे क्यों नहीं देखते? **आचार्य जवाब देते हैं – 'लोभात्' लोभ के कारण,..** उसे लोभ, ऐसी गृद्धि लगी है कि मेरी आयु भले क्षय हो, परन्तु लक्ष्मी की तो वृद्धि होती है न! मेरी आयु भले क्षय हो, लड़का तो बड़ा होता है न! यह वृद्धि होती है न! बड़ा होता है। यह तो वृद्धि होती है न! मेरा आयुष्य भले घट जाए, मैं मरण के समीप हो जाऊँ, स्त्री-पुत्र तो बढ़ते हैं न! मूढ़ ऐसा देखता है। समझ में आया? मेरा आयुष्य भले क्षय हो जाए, मृत्यु की तैयारी हो गयी परन्तु वह सब तो बढ़ गया न! लक्ष्मी बढ़ी, इज्जत बढ़ी, पुत्र, पैसे हुए, लड़के का लड़का और उसका लड़का, तीन-तीन, चार-चार पीढ़ी मैं देखता हूँ। बढ़ाया नहीं? परन्तु क्या बढ़ा?

**मुमुक्षु :** हूँफ लेकर मरे न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हूँफ लेकर मरे। ममता की मिथ्यादृष्टि की हूँफ लेकर मरे। अभी कहेंगे, हों!

हे शिष्य! **धनादिक की गृद्धता..** लक्ष्मी की गृद्धता। आत्मा की रुचि नहीं है। आहा..हा..! स्त्री, परिवार की गृद्धता। ये मेरे, ये मेरे, ये मेरे.. ये मेरे.. गृद्धता। **आसक्ति से**

**धनी लोग सामने आई हुई भी विपत्ति को नहीं देखते हैं,..** कैसे ? देखो !

**आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमं।**
**वांछतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम्।।१५।।**

**अर्थ – काल का व्यतीत होना,..** काल व्यतीत होता जाता है। इस मनुष्य देह का एक-एक समय चला जाता है। जितना आयुष्य लेकर आया है, उतना रहेगा। उसमें एक समय बढ़ेगा नहीं। इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र आवे तो भी जो आयुष्य का समय है, उसमें वृद्धि नहीं होती। जितना ५०-६० वर्ष लेकर आया है, उसमें से आयुष्य घटता जाता है। **आयु के क्षय का कारण है और कालान्तर के माफिक ब्याज के बढ़ने का कारण है,..** क्या कहते हैं ? मेरा काल भले कम हो, परन्तु यह (ब्याज आदि) तो बढ़ता है न ! यह ब्याज अर्थात् पैसा बढ़ता है, स्त्री बढ़ती है, कुटुम्ब बढ़ता है या नहीं ? समझ में आया ? वह तो बढ़ता है या नहीं ? कितने हुए ? मैं एक हमारा कुटुम्ब सौ। सौ व्यक्ति हुए। ओहो..हो.. ! परन्तु इसमें क्या बढ़ा ? मर गया। 'लक्ष्मी और अधिकार बढ़ते...' आता है या नहीं ?

**लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।**
**परिवार और कुटुम्ब है क्या ? वृद्धि नय पर तोलिये॥**
**संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।**
**नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥**

श्रीमद् राजचन्द्र। भाई ! श्रीमद् राजचन्द्र हो गये न ? सोलह वर्ष में बनाया है, हों ! सोलह वर्ष में ! सोलह वर्ष की उम्र। यह श्रीमद् राजचन्द्र। यह फोटो है न, फोटो ? यह सोलह वर्ष की उम्र का फोटो है। तैंतीस वर्ष में देह छूट गया। सात वर्ष में जातिस्मरणज्ञान हुआ था। सात वर्ष में जातिस्मरण—पूर्व भव का भान था। दशाश्रीमाली बनिया थे। बवाणिया (के थे)। अभी (संवत्) १९५७ के वर्ष में देह छूट गया। सोलह वर्ष में मोक्षमाला बनायी है। सोलह वर्ष। दस और छह। उसमें यह श्लोक बनाया है। अरे प्रभु ! कहते हैं कि आत्मा ! तुझे लक्ष्मी बढ़ी तो क्या बढ़ा ? इज्जत बढ़ी तो क्या बढ़ा ? कुटुम्ब बढ़ा तो क्या बढ़ा ? क्या बढ़ा यह तो कहो ? शूं, यह हमारी गुजराती भाषा है। क्या बढ़ा, यह तुम्हारी भाषा है। परिवार और कुटुम्ब... कुटुम्ब बढ़ा। पचास, सौ व्यक्ति, दो सौ व्यक्ति

हुए। ओहो..! समझ में आया? लक्ष्मी पचास लाख, करोड़, पाँच करोड़, दस करोड़। इज्जत, लड़के बढ़ा, योद्धा जैसे, छह-छह हाथ के लम्बे। समझ में आया? गोरा (अंग्रेज) जैसे। और पाँच-पाँच लाख की आमदनी करनेवाले। तुझे क्या बढ़ा? बढ़ा क्या? 'संसार का बढ़ना अरे..' यह तो तेरा संसार बढ़ा। 'नर देह की यह हार है' यह तो ऐसा कहते हैं, हों! वह कहता है मेरा काल भले क्षय हो, परन्तु यह तो बढ़ते हैं न! ऐसा कहते हैं, भाई! मेरा काल कम हुआ परन्तु यह बढ़ा या नहीं? लड़के किसके? मेरे लड़के, मेरी स्त्री कैसी होशियार! लड़कियों का विवाह किया, शादी की। कितनी लड़कियाँ? पाँच लड़कियाँ, एक-एक को पढ़ाया। कोई एल.एल.बी. और कोई एम.ए. और कोई यह और कोई वह। बाबूभाई! यह सब एक व्यक्ति कहता था। हमारी लड़की ऐसी। परन्तु तुम्हें कितना कहना है? हमारी लड़की एल.एल.बी. पढ़ी है। परन्तु अब क्या है? लड़की कहाँ तेरी थी? वह पढ़ी, उसमें तुझे क्या बढ़ा? हमारी लड़की एल.एल.बी., एम.ए. पास हुई, डॉक्टर में पास हुई, अमुक है और अमुक है और बिलायत गयी और जर्मन में ऐसा है, और ऐसा है, वहाँ नौकरी करती है और पढ़ती भी है, महीने में दो हजार का वेतन भी है। हें... ओहो..हो..! उत्साह तो कितना करे! तू किसका उत्साह करता है? वह तो परपदार्थ है।

**मुमुक्षु :** दुःखी होने की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दुःख होने के रास्ते में सुख मानता है, वह मूढ़ है, विवेकरहित है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? देखो कहेंगे, हों!

**जितना काल बीत जायेगा, उतनी ही ब्याज की आमदनी बढ़ जायेगी।** ब्याज अर्थात् वह बढ़ता है, ऐसा कहना है। ब्याज तो लक्ष्मी है, परन्तु जैसे-जैसे अपना आयुष्य बीतता है, लड़के का आयुष्य बढ़ता है या नहीं? ब्याज अर्थात् बढ़ता है या नहीं? पैसा बढ़े, पुत्र बढ़े, लक्ष्मी बढ़े, ऐसा सब बढ़ता है न? यह ब्याज। समझे? वह क्या कहते हैं? बुढ़िया का कुछ नहीं आता? लड़का हो तो आयुष्य बढ़े और वह कहे आयुष्य घटे।

**मुमुक्षु :** माँ कहे, मेरा लड़का बढ़ा होता है, आयुष्य में से कम होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बढ़ा हो, आयुष्य में से कम होता है। हाँ, ऐसी बात आती है। मूल तो यहाँ यह बात कहते हैं। अज्ञानी अपने देह का जितना आयुष्य लेकर आया है, वह

आयुष्य घटता जाता है। परन्तु उसकी दृष्टि उस पर नहीं है। वह बढ़ता है न! यह बढ़ा न! शरीर मेरा अच्छा हुआ न! बढ़ा हुआ न! लड़के हुए न। पाँच लड़के, लड़के के लड़के, उनके लड़के, उनकी लड़की को कहाँ सगाई... ओहो..हो..! सब याद कितना करेंगे अपने को? समझ में आया?

कहते हैं कि कालान्तर में ब्याज बढ़े वैसे... ब्याज शब्द से वह वृद्धि—लक्ष्मी की वृद्धि, कुटुम्ब की वृद्धि, पुत्र की वृद्धि, यह सब ब्याज बढ़ा कहलाये न? **ऐसे काल के व्यतीत होने को जो चाहते हैं,..** देखो! अपना काल जाये, उसे चाहे, भले काल जाओ। **उन्हें समझना चाहिए कि अपने जीवन से धन ज्यादा इष्ट है।** उनकी आयुष्य की अपेक्षा भी लक्ष्मी, स्त्री अधिक है। भले आयुष्य जाए परन्तु वे तो बढ़ते हैं या नहीं? मूढ़ जीव मरकर जायेगा कहाँ? चार गति में भटकने। ओहो..हो..! दो, पाँच, दस लाख रुपये हों, पैसे मिले, बहुत इज्जत। कमाया, हमने तो ध्यान रखकर कमाया। धूल में भी तेरा ध्यान नहीं। देखो!

**जीवन से धन ज्यादा इष्ट है।** धन शब्द से सब, हों! जीवन से पुत्र प्रिय। अपने शरीर में दुःख हो परन्तु यदि पुत्र के प्रति प्रेम हो और उसे यदि जरा बुखार आया हो, पाँच डिग्री का बुखार हो तो उसकी सम्हाल में जाता है। भाई.. भाई! तुझे कैसे है? भाई! तुझे कैसे है? अपने जीवन से भी वह अधिक प्रिय है। स्त्री का प्रेम हो तो ऐसा कहे, तुम्हें कैसे है? मुझे तो भले चाहे जो हो परन्तु तुम्हें कैसे है? ऐसी की ऐसी होली सुलगाता है। ऐसा कहते हैं कि इस आत्मा की निरोगता और चैतन्य का जिसे विवेक नहीं है, उसे बाह्य वस्तु में इतना प्रेम है कि अपना आयुष्य चला जाता है, उसकी दरकार नहीं। वह बढ़े न तो ठीक है, ऐसा मूढ़ ने मान रखा है। आहा..हा..! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा होता है न! हाँ, हाँ! लड़के का बहुत प्रेम हो तो ऐसा कहे, तुम्हें कैसा है? बापा! बापा! आपको कल पाँच (डिग्री) बुखार था न? भाई! मुझे तो चाहे जो हो, परन्तु तुझे कैसे है? भाई! ओहो..हो..! परन्तु यह क्या है? जैचन्दभाई!

**मुमुक्षु :** सत्य बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बापू कहे, तुझे कैसा है ? भले मेरा पैर न चले। तुझे कैसा है ? भाई ! बापू ! मुझे अच्छा है, हों ! आप चिन्ता मत करो। परन्तु ऐसा सुना है कि तुझे ठीक व्यवस्थित नहीं था, तुझे तीन दिन बुखार आया, सुना है। मुझे परेशानी नहीं, परेशानी नहीं। मूढ़ ! यह आयुष्य की स्थिति चली जाती है, उसकी तो दरकार नहीं और लक्ष्मी आदि के प्रेम में जीवन चला जाता है। पानी के रेले की भाँति रेला चला जाता है। तुझे तेरे आत्मा की दरकार नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? आहा..हा.. !

**विशदार्थ – मतलब यह है कि धनियों को अपना जीवन उतना इष्ट नहीं, जितना कि धन।** देखो ! धन शब्द से लक्ष्मी, पुत्र, पुत्री सब। **धनी चाहता है कि जितना काल बीत जायेगा, उतनी ही ब्याज की आमदनी बढ़ जायेगी।** जितना काल जायेगा, उसमें पैसा बढ़ेगा, पुत्र बढ़ेगा, सब बढ़ेगा न ! बढ़ेगा न ! परन्तु चला जायेगा, यह आयुष्य पूरा करके मरकर जायेगा कहीं। उसकी तो तुझे दरकार है नहीं। समझ में आया ? **जितना काल बीत जायेगा, उतनी ही ब्याज की आमदनी बढ़ जायेगी।** लक्ष्मी बढ़ जायेगी, पुत्र बढ़ेंगे, वेतन बढ़ेगा, परन्तु यह तेरा आयुष्य चला जाता है, मर जायेगा अब। इस आत्मा का क्या करना, इसकी तो तुझे दरकार नहीं है।

**वह यह ख्याल नहीं करता कि जितना काल बीत जायेगा उतनी ही मेरी आयु (जीवन) घट जायेगी।** तू कहता है, बढ़ गया, ब्याज और पुत्र। यहाँ कहते हैं आयुष्य घट गया। दोनों के देखने में अन्तर है, ऐसा कहते हैं। आहा..हा.. ! बराबर है ? यहाँ आयुष्य जितना घट गया, उसमें एक समय बढ़नेवाला नहीं है। जितना आयुष्य लेकर आया है, ५०, ६०, ७०, ८०, वह एक समय बढ़ेगा नहीं। मृत्यु के समीप जाता है। तो यह कहते है कि मैं बढ़ता हूँ। भगवान कहते हैं कि तेरा आयुष्य घटता है। स्थिति घट गयी, क्या बढ़ा तू ? आत्मा की दृष्टि की नहीं। उसकी चिन्ता नहीं, आत्मा की चिन्ता नहीं। इस लड़के की चिन्ता है।

यह दृष्टि की बात करते हैं। बात तो यह करते हैं कि तुझे मनुष्यपना मिला, उसमें आत्मा का धर्म, शुद्ध चैतन्य का अनुभव करना, आत्मा की शान्ति का वेदन करना, आत्मा के दर्शन, श्रद्धा, ज्ञान करने के लिए मनुष्यपना मिला है। वह तो तू करता नहीं और बाहर की वस्तु की वृद्धि में तेरा आयुष्य चला जाता है तो भी वह बढ़ता है, ऐसा तू मानता है। आयुष्य चला जाता है–घटता है और बाहर में ये बढ़ते हैं, ऐसा तू मानता है। तेरी दृष्टि कैसी

है ? कहो, बराबर होगा न ? फावाभाई ! सर्वत्र लागू पड़े, ऐसा है या नहीं ? सर्वत्र, मैंने कहा, हों ! एक जगह कहाँ कहा ?

**मुमुक्षु :** देखने तो आना नहीं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** देखने आना नहीं परन्तु यहाँ आँख में तरपटी कर जाए न ! आहा.. ! पुत्र प्रसन्न, पुत्र का पुत्र प्रसन्न, पचास-पचास हजार कमाता है। एक-एक लड़का महीने में पचास-पचास हजार कमाता है, ऐसे छह लड़के हैं। तीन लाख की आमदनी, बारह महीने में छत्तीस लाख। परन्तु मरकर तू कहाँ जायेगा ? वहाँ साथ में कोई आनेवाला नहीं है। ममता लेकर चला जायेगा। ममता लेकर चला जायेगा। मनुष्यपना अनन्त काल में मुश्किल से मिला है। ऐसी मनुष्यपने की सामग्री में तेरे आत्मा का हित करना, वह तो तूने किया नहीं और यहाँ तृष्णा में रहा। समझ में आया ? रंक की तरह रोयेगा। अरे ! कोई नहीं, मैंने इतना-इतना (किया) मुझे कोई साथ नहीं। ऐसा आता है, हों ! भाई ! उसमें बहुत आता है। नरक की बात। ज्ञानार्णव (में)।

अरे ! मैंने पाप किये, तब सब कुटुम्ब कबीला था। कोई मेरे साथ नहीं ? अरे ! मैंने उनके लिए ममता की, मेरा काल गँवाया, वह कुटुम्ब कहाँ गया ? यह दुःख मुझसे सहन नहीं होता। नरक में पीड़ा भोगता है। पाप करके नरक में जाता है। अरे रे ! कहाँ गया परिवार ? भाई कहाँ गये ? पत्नी कहाँ गयी ? मैंने इतने पाप किये, उनका फल मुझे अकेले को भोगने का ? सब कहाँ चले गये ? मुझे कोई साथ नहीं। कहाँ रहेगा, कितना काल मैं रहूँगा ? यह क्या वस्तु है ? नरक की वेदना देखकर इतना त्रास लगता है। भगवान जाने और (तू) दुःख वेदे। केवली जाने की कितना दुःख नरक में है। उसकी दरकार नहीं करता। यह मेरा पुत्र और ये मेरे, ऐसा करके आयुष्य का काल उसमें गँवाता है, ऐसा कहते हैं। तेरे आत्मा की दरकार कर, भाई ! वह तो जो होनेवाला होगा, वह होगा। पूर्व के पुण्य-पाप के कारण होगा।

तेरा आत्मा अखण्ड आनन्द (स्वरूप है)। एक क्षण भी उस पर नजर करने से जो शान्ति मिले, वैसी शान्ति तीन काल में अन्यत्र नहीं है। आहा..हा.. ! वहाँ उसकी कीमत नहीं, उसकी कीमत बाहर में है। विवेक भ्रष्ट हो गया, कहते हैं। तेरा विवेक नाश हो गया है। यह कहते हैं न ? देखो ! **मेरी आयु (जीवन) घट जायेगी। वह धनवृद्धि के ख्याल**

**में जीवन (आयु) विनाश की ओर तनिक भी लक्ष्य नहीं देता।** ध्यान भी नहीं देता कि यह चला जाता है, समय-समय चला जाता है, मरकर तुझे कहाँ जाना है ? समझ में आया ? कोई साथ में नहीं आयेगा। अन्त में बोलेगा, बापू ! हमने कहा था तुम अब निवृत्ति लो। परन्तु भट के लड़के ने निवृत्ति नहीं ली। बापू ! अब तुम निवृत्ति लो। अब कुछ करना रहने दो। नहीं परन्तु भाई ! थोड़ा-थोड़ा तो ध्यान रखने दो मुझे। दुकान का थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखना न ! पोपटभाई ! ये छहों लड़के अन्दर में कहते हों, अब बापू छोड़ दे तो अच्छा, हम स्वतन्त्र तो होवें परन्तु सर्वत्र थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखे। थोड़ा-थोड़ा सबको डर रहा करे। बापू आयेंगे और कुछ पूछेंगे तो ? कहो, बराबर है। बाबूभाई ! आहा..हा.. !

**इसलिए मालूम होता है कि धनियों को जीवन (प्राणों) की अपेक्षा धन ज्यादा अच्छा लगता है।** उसे ग्यारहवाँ प्राण कहते हैं न ? धन तो प्राण है। धन जाये तो प्राण जाये, मर जाये। समझे न ? गरीब ? गरीब तो मर जाऊँ। अरर ! यह ? मैं गरीब ? मैं गरीब ? मर जाऊँ। अर.र ! कितनी तृष्णा अन्दर में पड़ी है ! ऐई ! अभी तो गरीब शब्द नाम सुनना सुहाता नहीं। ऐसा कहते हैं। परन्तु मरकर कहीं चला जायेगा, उसका तो देख। ऐई ! आहा..हा.. !

**धन ज्यादा अच्छा लगता है।** भले मरकर दुर्गति में जाऊँ परन्तु मैं गरीब न कहलाऊँ। मुझे तो लक्ष्मीवाला कहलाना है। **इस प्रकार के व्यामोह का कारण होने से धन को धिक्कार है।** इस कारण से लक्ष्मी, कुटुम्ब आदि को धिक्कार हो। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान बिना मैं चला जाऊँ, वह मनुष्य जीवन का फल नहीं है। मनुष्यभव अफल गया, अफल। इसलिए कहते हैं कि ऐसी लक्ष्मी को धिक्कार हो। इस कुटुम्ब को, पुत्र को धिक्कार हो कि जिसमें अपना आयुष्य चला जाता है और पर की ममता में खो गया। अत: अपने स्वरूप की दृष्टि करने में पर की दरकार छोड़ देना, ऐसा कहते हैं। कल क्या होगा ? होगा ? जो होना होगा, वह होगा। पर का अपन क्या कर सकते हैं ? मेरा आत्मा शुद्ध आनन्द, उसकी दृष्टि कर सकता हूँ, उसमें स्थिर रह सकता हूँ, वह मेरा स्वतन्त्र पुरुषार्थ है। उसमें किसी की आवश्यकता नहीं है। उसके लिए इष्टोपदेश कहा गया है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)